© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 11 | October – December 2017

बालकों में भाषिक विकास

प्रोमिला, Net Qualified 2016

'बाल्यावस्था जीवन की आधारभूत अवस्था है।' जीवन के शुरू के वर्षों में अभिवृत्तियों, आदतों और व्यवहार के प्रकार पक्के हो जाते हैं। बालरूप की शक्ति यही है जिसका अनुभव हम काव्य, संगीत, चित्रा एवं मूर्ति में करते हैं। भारतीय दृष्टि बाल–सौंदर्य की अनुभूति में रूप की पूर्णता उसकी शक्ति का स्रोत एवं स्वरूप है वह रूप, जिसकी पूर्णता में प्रत्येक अंग अपने प्रभाव के साथ, संगीत में संवादी स्वर की भांति, अंगी में समरस हो जाता है संतुलन, सामंजस्य आदि रूप संपदा इतनी पूर्ण कि कुछ भी चाहने को शेष नहीं रूप एवं रूपित, बाह्य और आभ्यंतर, शरीर एवं आत्मा का ऐसा आश्चर्यजनक अभेद जिसमें सारे के सारे भेद गल गए हैं, समय की सीमा समाप्त और जीवन के अंतराल में महाकाल के लय की अनुभूति बाल–सौंदर्य द्वारा उन्मीलित लोक में सत्य प्रमाणित होती है। अंतर्मन के ज्योतिर्लोक में अभूतपूर्व ज्योतियों का प्रकाश, अनुभूत आनंदों की अनुभूति, अदृष्ट दिशाओं का उन्मीलन, सद्यः प्रसूत रस–गंध–स्पर्श रूप–ध्वनि का प्रवाह और अंत में, अपने ही भीतर एक नूतन, आनंद–विभोर, प्रभाओं से पोषित, मानव के आविर्भाव की जाग्रत अनुभूति बाल–रूप में होती है, चाहे वह सूर का बाल रूप कृष्ण, तुलसी का बाल रूप राम–लक्ष्मण का प्रत्येक घर परिवार में जन्मा सामान्य बाल–रूपा।

ISSN 2454-308X
9 770024 543081

बाल–अनुभूति धूप सी सरल, स्पष्ट और सत्य होती है, और सरल का विश्लेषण नहीं होता। बालरूप के जादू को हम सब जानते हैं। बालरूप सक्रिय तत्व है और मन के मनोहर, मोहक भागों के लिए अभिव्यक्ति की भाषा। बालरूप बोलता है, और अव्याज मनोहर रूप तो निर्मल, निष्कलुष आत्मा की वाणी है। बाल रूप बताता ही नहीं, वह अपने संकेतों, ध्वनियों, अंतर में अनुरणन पैदा करने की शक्ति से जताता भी बहुत कुछ है। यह कभी दृढ़ आत्मा को अपने कलेवर की गरिमा से प्रकट करता है, कभी गति से काल की लय और जीवन की ऊर्जाओं, को कभी मन के सुकुमार भावों को तो कभी आत्मा के मुक्त आनंद को। बालरूप अभिव्यक्ति के लिए समर्थ माध्यम होने के कारण व्यापक तत्व हैं। जहाँ भी निर्माण, नियोजन, सृजन, व्यवस्था, विन्यास, सन्निवेश, लय गति मुक्त उतार–चढ़ाव, सज्जा, वेश–भूषा, अलंकरण और वृरतित्व की कोई विद्या, श्रृंगार की रूचि तथा अभिनव और अभिराम के लिए प्रस्ताव, वहाँ–वहाँ बाल रूप है। मन आश्चर्य से भर जाता है, आहलाद से रोमांचित हो जाता है। रग–रग और रोम–रोम में रोमांच और आनंद की हिलोर उठती है। कहीं–कहीं बालरूप इतना बहुल और महनीय हो उठता है कि वह अपने ही बंधनों को तोड़कर वह उठता है।

बाल क्रीड़ाओं में संभूत मचलती, मदमाती, इठलाती गतियों का वैभव–विलास है। बाल–नृत्य में गति की लोच और उसका स्पंदन आँखों के आगे उतर आते हैं। भुवन के समूचे विन्यास में ऊर्ध्वाधर गतियाँ अपने संपूर्ण वैभव के साथ मानो गहकर ग्रथित कर दी जाती हैं अभिव्यक्ति का कोई क्षेत्रा नहीं जहाँ गति न हो। व्यक्ति में गर्भागमन के क्षण से मृत्यु तक हमेशा परिवर्तन होता रहता है, वह कभी एक–सा नहीं रहता। शैशवास्था और बाल्यावस्था भर उसकी शारीरिक और बौद्धिक उन्नति होती रहती है, जो कि युवावस्था की ओर बढ़ने की निशानी है। बालक वस्तुतः एक व्यक्ति ही है। इसमें एक ओर माता के गर्भस्थ भ्रूण के अतीत के संस्कार हैं तो दूसरी ओर उसमें भविष्य का बालक, किशोर तथा प्रौढ़ व्यक्ति की संकल्पना छिपी है। महाभारत कालीन शोधों में पता लग चुका था कि गर्भावस्था में भ्रूण सीखता है। इस तथ्यात्मक सत्य की पुष्टि 1984 में अमरीकी मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोधों के माध्यम से की है।

चिकित्सा विज्ञान एवं मनोविज्ञान के संयुक्त प्रयासों से इस दिशा में अन्य अन्वेषणात्मक तथ्य सामने आ रहे हैं। मनोविज्ञान वस्तुतः एक अंतरविज्ञानीय क्षेत्र है। 1940 के अंत में भाषाविज्ञानी भाषार्जन की जिज्ञासाओं के लिए उत्पादन और बोधन के रहस्य समझने के लिए मनोविज्ञान की ओर झुके। 1950 में थामस सीबक और चार्ल्स आसगुड ने मिलकर भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान के बीच अंतः क्रियाओं के लिए एक समिति की स्थापना की। भाषाविज्ञान यदि भाषा की भाषाई व्यवस्था का वैज्ञानिक सिद्धान्त है तो मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं के भाषाई ज्ञान का सिद्धाता मनो भाषाविज्ञान इन दोनों का समन्वित उपागम है। वस्तुतः मनो भाषाविज्ञान का उद्देश्य इस तथ्य को स्पष्ट करना है कि भाषाई ज्ञान संज्ञानात्मक व्यवस्थाओं में किस प्रकार द्योतित होता है। साथ ही, वह इन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की ओर संकेत करता है जो इसका उपयोग करती है। भाषा सिद्धांत तथा अधिगम सिद्धांत परस्पर संब होकर भाषा–अधिगम के सिद्धांतों का गठन करते हैं। मनोभाषा विज्ञान का मुख्य कार्य उन समस्त मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन करना है, जो भाषा ज्ञान, भाषा संप्राप्ति और भाषा–व्यवहार से संबंध है। भाषा–अर्जन में बालक क्या अर्जित करता है, किस प्रकार अर्जित करता है तथा संदेशों के बोधन एवं अभिव्यक्ति में इनका किस प्रकार उपयोग करता है आदि प्रमुख हैं। ए.आर.डीबोल्ड के अनुसार, 'मनोविज्ञान मुख्य रूप में संदेशों और मानव व्यक्तियों की विशेषताओं के मध्य संबंधों से सब है, जो इस संदेश का चयन और व्याख्या करते हैं। पॉल फ्रीज के अनुसार 'मनोभाषाविज्ञान हमारी अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं और संप्रेषण के बीच संबंधों का अध्ययन है और हमारे बाल्यकाल या बाद में सीखी गई भाषा द्वारा प्रदत्त माध्यम से सब है।'

संप्रेषण की प्रक्रिया

मनोभाषाविज्ञान को संप्रेषण की क्रिया को ध्यान में रखना होता है। वक्ता और श्रोता अपने संदेश को जिस स्थिति में रखता है उसका प्रतिबिंब भी वहीं दर्शाता है। इस अवस्था में मनो भाषाविज्ञान दो दिशाओं में कार्य करता है

1. मनोविज्ञान वक्ता और श्रोता की प्रक्रिया की व्यवस्था, संकेतन और विसंकेतन, मानसिक स्थिति जो भाषा के उत्पादन में सहयोग करता है। साथ ही, यह सामाजिक या व्यक्तिगत समूहों के बीच संबंधों के मानसिक प्रभाव का भी अध्ययन करता है।

2. भाषाविज्ञान भाषा के इन पक्षों का अध्ययन करता है कोड की सामान्य व्यवस्था, संदेश के घटक और इनके कोड की रूपावली की व्यवस्था, संयोजक अनुक्रम की प्रकारता और वाक्य विन्यासात्मक व्यवस्था की 'गतिकी' एवं भाषा का उद्भवा मनोभाषाविज्ञान के सामने कुछ विचारणीय समस्याएँ है, जिनके विश्वसनीय समाधान में मनोभाषाविद लगे हुए हैं;

- क. बालक अपनी मातृभाषा कैसे सीखता है ?
- ख. बाल भाषा और व्यस्क भाषा में क्या अंतर है ? पहली दूसरी में कैसे बदलती है ?
- ग. भाषा अधिगम सार्वभौमिक है तब भी यह पता लगाना कि इसका अधिगम कैसे होता है ?
- घ. भाषिक रूप से अर्जित की गई और संवेदनात्मक रूप से उत्पन्न भाषा की इकाई में क्या संबंध है ?
- ड. वाक्यों का उत्पादन कैसे होता है और वे कैसे समझे जाते हैं ?

बालक के विकास का एक निश्चित क्रम है जिसमें डिंब, पिंड, भ्रूण, शिशु, बालक, किशोर और प्रौढ़ शामिल हैं। यह एक सतत बाह्य तथा आंतरिक परिवर्तन है जिसको देखा जा सकता है और एक सीमा तक मापा भी जा सकता है। इन परिवर्तनों में कुछेक तो स्वाभाविक होते हैं और कुछ अस्वाभाविक या कृत्रिम। जो स्वाभाविक परिवर्तन हैं उनको मनोविज्ञान में परिपक्वन (Maturation) कहा जाता है। कृत्रिम या बाह्य वातावरण से प्रभावित होकर बालक में जो परिवर्तन होता है उसे अभिवृद्धि और विकास कहते हैं। बालक के संपूर्ण विकास को समझने के लिए उसकी विभिन्न अवस्थाओं के विकास की विशिष्टाएँ ये हैं। क. बालक का व्यक्ति ख. विकास के सिद्धांत विकास की संकल्पना, विकास के कारण, विकास की गति, विकास में परिवर्तन, विकास की विशेषताएँ ग. बालक की अवस्थाएँ शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, गामक तथा सामाजिक घ. आंतरिक अवयवों का विकास, मस्तिष्क, हृदय, माँसपेशियाँ तथा श्वसन तंत्र ड. बालक में संज्ञानात्मक विकास तथा च. बाल विकास का शैक्षिक पक्ष।

© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 11 | October – December 2017

प्रत्येक मनुष्य या प्राणी विकास के एक साँचे पर चलता है। विकास की गति और सीमाएं सभी के लिए एक–सी हैं। विकास का सामान्य साँचा निम्न है;

1. 4–16 सप्ताह में 12 occul omotor muscle पर नियंत्रण।
2. 16–18 सप्ताह में गर्दन और हाथों की माँस पेशियों पर नियंत्रण।
3. 18–40 सप्ताह में पेट और हाथों पर नियंत्रण, जिसके कारण वह बैठ और खिसक सकता है;
4. 40–52 सप्ताह में पैर, अंगुलियों और अँगूठों पर नियंत्रण।
5. दूसरे साल में चल सकता है, दौड़ सकता है, शब्द और पदांश बोलता है, परिवारी जनों को पहचानता है।
6. तीसरे साल में वाक्य बोलता है, शब्दों को प्रस्तुत करता है।
7. चौथे साल प्रश्न पूछता है, दैनिक कार्यों पर आत्मनिर्भर हो जाता है।
8. पाँचवे साल बालक गतिवाही नियंत्रण में पूर्णतया समर्थ हो जाता है।

बाल भाषा (Infinate Language) बोलता है और कहानी सुना सकता है। बालक का मानसिक विकास भ्रूणावस्था से प्रारंभ हो जाता है अद्यतन शोधों से ज्ञात हुआ है कि बालक का मानसिक विकास भ्रूणावस्था से ही आरंभ हो जाता है। भ्रूण मात्रा निष्क्रिय कोषों का पिंड नहीं है, अपितु वह एक नन्हें मानवीय जीवन का प्रारंभ है। माँ के गर्भ में इसका हिलना–डुलना, अँगूठा चूसना, सिर उठाना, हाथ पैर हिलाना आदि मात्र संयोग नहीं है, बल्कि इससे अर्थपूर्ण मस्तिष्कीय गतिविधि का बोध होता है। गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास के संबंध में कुछ अद्यतन अनुसंधान चौंकाने वाले हैं। उत्तरी केलीफोर्निया के मनोभाषाविद एंथोनी डिथास्पर तथा उनके सहयोगी विलियम फिशर ने दस नवजात शिशुओं पर एक परीक्षण करके निष्कर्षों में कहा है कि शिशु अपनी माँ की आवाज को सुनते हैं और जन्म के बाद उनकी आवाज पहचानते हैं। अमरीकी मनोचिकित्सक तथा टोरंटो (कनाडा) में कार्यरत साइको थे टिपिस्ट – डॉ0 थामस बर्नी में एक शोधपूर्ण ग्रंथ लिखा है – 'दी सीक्रेट लाइफ ऑफ दी अन्बॉर्न चाइल्ड' इसके निष्कर्ष ये हैं;

1. गर्भवती माता के क्रियाकलापों और विचारधारा का शिशु के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है।
2. चार–पाँच मास का भ्रूण संगीत से प्रभावित होता है।
3. माता के विचारों, भावनाओं तथा दैनिक व्यवहारों का सीधा प्रभाव भ्रूण पर पड़ता है।
4. भ्रूण मात्रा प्रेम या घृणा के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता वरन वह इनसे कहीं अधिक पेचीदा तथा रहस्यात्मक भावनाओं के प्रति भी सचेत रहता है और अपनी प्रतिक्रिया देता है।
5. अजन्मा शिशु संवेदनशील स्मरण शक्ति का धनी एक सचेत प्राणी है।
6. छठे मास के प्रारम्भ से ही गर्भस्थ शिशु सुनने लगता है और माता की बोली पर हिलने–डुलने लगता है।
7. गर्भस्य शिशु बौद्धिक रूप से इतना परिपक्व होता है कि वह माता की प्रेममयी वाणी को अनुभव करता है।

गर्भावस्था में ही प्रशिक्षण

बालक के मानसि विकास की प्रक्रिया में इतना ही नहीं, जर्मन अखबार 'सर्ज' की माने तो यह कल्पना साकार हो जायेगी कि बच्चों को गर्भावस्था में ही प्राथमिक शिक्षा दी जा सकती है। गर्भ में ही प्रशिक्षिण शिशु जन्मे के बाद अचानक वयस्क जैसा नहीं दीखेगा, इसकी पूरी गारंटी जर्मन वैज्ञानिकों ने माता–पिताओं को दे दी है। सामान्य शिशुओं के जैसा ही भोलापन इन प्रशिक्षित शिशुओं में होगा।

बालकों में भाषा–अर्जन की प्रक्रिया

बालक का विकास दो प्रकार का माना जा सकता है सामान्य विकास में परिपक्वता के अनुक्रम में शरीर आदि की सहज अभिवृद्धि होती रहती है और विशिष्ट विकास में परिपक्वता के परिणाम स्वरूप जो अभिवृद्धि होती हैं, उसमें अधिगम द्वारा विशिष्टता लाई जाती है। इसमें प्रशिक्षण तथा अभ्यास का विशेष स्थान होता है। अधिगम से बालक में बौद्धिक, गत्यात्मक, संप्रत्ययात्मक, प्रत्यक्षात्मक, भाषिक, नैतिक आदि विशिष्ट विकास होता है। भाषिक विकास मानव प्राणी की विशिष्टता माना जाता है। भाषा को मानव व्यवहार की विशिष्टता कहने में भाषा की अपनी ही आंतरिक तथा बाह्य जटिल संरचना का हाथ है। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री ब्लाक एण्ड ट्रेगर ने भाषा की परिभाषा में कहा है कि 'भाषा यादृच्छिक (माने हुए)। वाक् प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसके माध्यम से उस भाषाई समुदाय के लोग परस्पर विचारों का आदान–प्रदान एवं सहयोग करते हैं। किन्तु, भाषा की संतुलित एवं तार्किक परिभाषा भाषा विज्ञानवेत्ता डॉ0 राम लखन मीना ने दी है, 'भाषा, यादृच्छिक ध्वनि वाक् प्रतीकों की वह क्रम व्यवस्था है जिसके माध्यम से समाज विशेष के लोग आपस में विचार विनिमय करते हैं, उसके माध्यम से वे अपने सांस्कृतिक – सामाजिक उद्देश्यों की संपूर्ति करते हैं। इन परिभाषाओं के आधार पर भाषा की वस्तु और रूप के संबंध में ये विशेषताएँ परिलक्षित होती है – 1. भाषा एक क्रम व्यवस्था है 2. यह व्यवस्था प्रतीकों से बनी है 3. ये प्रतीक वाचिक है 4. वाचिक प्रतीकों तथा कथ्य के बीच संबंध यादृच्छिक माने हुए हैं, अनिवार्य या नैसर्गिक नहीं 5. भाषा का यह रूप या वस्तु एक साधन के रूप में समाज के उपयोग के लिए है, निश्चित रूप से यह साधन मानव विकास और संस्कृति की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इसलिए मानव शिशु भाषा सीखता है।

शिशु की भाषा संप्राप्ति की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के लिए दो शब्द आजकल प्रचलित है; 1. अर्जन 2. अधिगम भाषा अर्जन तथा भाषा अधिगम तत्वतः दो नितांत अलग प्रक्रियाएँ नहीं हैं। अर्जन अपने ही प्रयत्नें और अनुभवों से कुछ प्राप्त करने की प्रक्रिया है, जबकि अधिगम किसी विषय या कौशल के संबंध में ज्ञान या सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया है। अर्जन के लिए स्वभाविक वातावरण तथा तदत अनुभव प्रमुख तत्व है और अधिगम के लिए अध्ययन–अध्ययन प्रमुख तत्व है। बालक अपनी मातृभाषा सहज वातावरण में अपनी ही अंतर्दृष्टि या प्रयासों से सीखता है, इसलिए इसे भाषा–अर्जन कहा जाता है, और अनुभव तथा अध्ययन या प्रशिक्षण से सीखी गई भाषा की प्रक्रिया को भाषा–अधिगम कहा गया है। उपयुक्त विचार एक व्यावहारिक समाधान है। वस्तुतः अर्जन और अधिगम प्रक्रिया में कोई तात्विक या सैद्धांतिक अंतर नहीं है, सिवाय इसके कि अर्जन बालक की सहज वृद्धि और विकास के संदर्भ में देखा जाता है लेकिन दोनों प्रक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक आधार एक ही है।

बालक भाषा का अर्जन कैसे करता है ?

अब प्रश्न उठता है, बालक भाषा का अर्जन या अधिगम कैसे करता है ? इस संबंध में मनोविज्ञान के दो सम्प्रदायों के विचार अति महत्वपूर्ण है। व्यवहारवादी मनोविज्ञानी यह मानते हैं कि बालक के भाषा अधिगम में कोई विशिष्टता नहीं होती। भाषा भी केवल अनुभव द्वारा या अभ्यास द्वारा सीखी जाती है, अनुभव, प्रशिक्षण के द्वारा उसके मन पर कुछ भी अंकित किया जा सकता है। इसे ही अनुभववाद कहा जाता है, किन्तु संज्ञानवादियों या बुद्धिवादियों के अनुसार भाषा मानव की अपनी सम्पत्ति है। मानव शिशु भाषा अर्जन की सहजात प्रक्रिया के साथ जन्म लेता है। बालक के मस्तिष्क में पहले से ही एक प्रदत्त संसाधक यांत्रिक व्यवस्था होती है। बालक भाषा की दत्तक सामग्री को सुनता है और उसके बारे में प्राक्कल्पनाएँ करता है और मस्तिष्क के डाटा प्रोसेसिंग की सहायता से क्रमशः नियमों की सहायता से नए–नए वाक्यों की सृजना करता है। इन नियमों की खोज में कभी–कभी बालक गलतियाँ करता है, लेकिन ये गलतियाँ भाषा सीखने की प्रक्रिया में बालक की प्राक्कल्पनाओं और पूर्व परीक्षण का प्रतिनिधित्व करती हैं। भाषा अर्जन में 'उद्भासन' का महत्व नहीं है, महत्व है, उसकी प्राक्कल्पना से निर्माण और समस्या समाधान की प्रक्रिया का। बालक अपने अंदर स्वतः निहित एक निश्चित कार्यविधि द्वारा भाषा सीखता है। भाषा बालक की एक सृजनात्मक प्रक्रिया है, यह एक अनिवार्य प्रक्रिया है। मंद से मंद बुद्धिवाला बालक एक भाषा आवश्य सीख लेता है। भाषा सीखने के लिए सामान्य प्रतिभा की भी जरूरत नहीं होती। बालकों के मन मस्तिष्क में एक जैविक घड़ी होती है, जो उसके भाषा–अर्जन की समय सारणी की सारणियों का निर्धारण करती है। इसीलिए भाषा–अर्जन निश्चित चरणों में संपन्न होता है।

© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 11 | October – December 2017

भाषा–अर्जन की इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम जो भी भाषा अर्जित की जा रही है, बालक की एक संभाव्य अनुमेय आयु में भाषा–अर्जन के लगभग समान गुण और गति दिखाई पड़ती है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संज्ञानवादी या मनोवादी भाषाविद् भाषा को मानव जाति की एक विशिष्ट संपत्ति (एण्डोमेंट) मानते हैं और भाषा–अर्जन को मानव शिशु की सहजता और अनिवार्य प्रवृत्ति मानते हैं। इनके अनुसार इस अर्जन में बाह्य जगत गौण है, आंतरिक जगत ही मुख्य है। इसीलिए नाअम चामस्की कहते हैं, 'किसी भी जीवतंत्रा को समझने के लिए उसकी आंतरिक संरचना को समझना उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि बाह्य उद्दीपनों या प्रेरणाओं को समझना।' संज्ञानवादी इन धारणाओं से मिलती–जुलती बातें ही मनोभाषाविज्ञानी कहते हैं। इनकी मान्यता है कि शिशु में सहज भाषा–अर्जन की व्यवस्था होती है, इसका आधार है, बालक का जैविक विकास।

भाषा–अर्जन एक विशिष्टता है। पशु–पक्षियों में भी संप्रेषण–क्षमता होती है, किन्तु वाग्यंत्रों पर नियंत्रण करके बोलने योग्य ध्वनियों की श्रृंखला उत्पन्न करना मनुष्य जाति की विशेषता है। शिशु भाषा कैसे अर्जित करता है, इसके लिए संज्ञानवादी बालक के प्रदत्त संसाधन क्षमता का उल्लेख करते हैं, और मनोभाषाविज्ञानियों के अनुसार इस प्रक्रम से वह भाषा के नियमों की खोज नहीं करता, अपितु उसके मस्तिष्क में पहले से ही ये नियम विद्यमान रहते हैं। शिशु के मस्तिष्क की तुलना कम्प्यूटर तकनीक से की जाती है। कम्प्यूटर में पहले से ही सामग्री भरी जाती है, बाद में संसाधन के माध्यम से वांछित परिणाम निकाले जाते हैं। उसी प्रकार शिशु का मस्तिष्क जैविक रूप से अभिक्रमित होता है अर्थात् शिशु में जन्म से ही एक जैविक उपकरण होता है, जो भाषा अर्जन में सहायक होता है। इस अपरेटस में पहले से ही भाषा–नियम या अर्जन संबंधी निर्देश भरे होते हैं। जब वह भाषा का प्रयोग करता है, तो स्वतः खोजे गए नियमों के आधार पर नए वाक्य नहीं बनता, अपितु उसके मस्तिष्क के पूर्व से ही विद्यमान नियमों को भाषा प्रयोग द्वारा निश्चित करते हैं। ये नियम उसके मस्तिष्क में किस रूप में रहते हैं, इसके लिए भाषा–अर्जन युक्त की बात की जाती है।

उपरोक्त दोनों मतों पर चिंतन के उपरांत हम पाते हैं कि भाषा–अर्जन में व्यवहारवादी और संज्ञानवादी विचारधाराओं के अपने–अपने अभिमत हैं। किन्तु, शिशु में भाषा–अर्जन के सहजात गुणों को मानते हुए भी उन गुणों को सचेत या जाग्रत करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है और वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करना भी अनिवार्य होता है। वातावरण के भाषाई अनुकूल तथा प्रतिकूल तथा प्रतिकूल तत्वों का बालक के भाषिक विकास पर प्रभाव पड़ता हुआ देखा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बालक के भाषा–अर्जन के सिद्धान्त को एकांगी दृष्टिकोण के बजाय बहुआयामी दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। बालकों के भाषिक विकास की प्रक्रिया में भाषा–अर्जन और संप्रेषण पर निम्न बिन्दुओं के आधार पर विचार करना समीचीन होगा;

क. बाल–विकास और भाषा–अर्जन

ख. सामान्य बालक का भाषिक विकास–ध्वनि विकास, शब्दावली विकास, वाक्य विकास, बोधन–विकास, आर्थिक–विकास, भाषिक संप्रेषण–विकास

ग. अवाचिक संप्रेषण का विकास

घ. भाषा विकास में सर्वभाषा तत्व

बालविकास और भाषा अर्जन :

सामान्य तथा असामान्य बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, गामक तथा सामाजिक विकास की विशिष्टताओं से बालक की भाषा अधिगम प्रक्रिया प्रतिबंधित है। विकास की एक विशिष्ट स्थिति में विशिष्ट वस्तु का अधिगम संभव है। आयु के साथ विकास में परिवर्तन होते हैं। परिवर्तनों के अभिलक्षणों के अनुरूप अधिगम प्रक्रिया संपन्न होती है। बालकों का भाषा अर्जन भी विकास निरपेक्ष नहीं हो सकता। भाषिक विकास में अर्जन और अधिगम प्रक्रियाओं को समझने के लिए बालक के विकास में विविध पक्षों में जो परिवर्तन, अभिवृद्धि, परिपक्वता आदि के कारण होते हैं, उनके आधारों को ध्यान में रखना आवश्यक है। शारीरिक परिपक्वता किसी कार्य को सीखने के लिए उतनी ही आवश्यक है, जितनी मानसिक परिपक्वता। जब तक शरीर तथा माँसपेशियाँ परिपक्व नहीं हो जातीं, तब तक किसी प्रकार के व्यवहारों में संशोधन नहीं होता। मनोवैज्ञानिक वोरिंग तथा लाँग फील्ड के अनुसार, परिपक्वता एक ऐसा विकास है, जिसका अस्तित्व सीखी जाने वाली क्रिया या व्यवहार से पूर्व होना आवश्यक है। बालक के भाषा अर्जन का संबंध उसके शारीरिक विकास से है। इसे बालक में हुए ध्वनियों के विकास से भली भांति जाना जा सकता है। उच्चारण संबंधी अवयवों एवं माँसपेशियों को ठीक संचालन करना बालक जब तक नहीं सीखता, तब तक वह ध्वनियों का उच्चारण नहीं देख सकता। भाषिक विकास की इस नैसर्गिक प्रक्रिया में शिशु सबसे पहले 'स्वरों' का उच्चारण करता है।

शिशु सर्वप्रथम औच्चारणिक दृष्टि से सुगम, सरल और कोमल 'अ' या 'आ' ध्वनियाँ उच्चारित करता है। बालक 'इ' या 'उ' अथवा 'ए' का उच्चारण अपेक्षाकृत कठिन होने के कारण उच्चारण नहीं कर सकता। इसका कारण है स्वर उसकी स्वर तंत्रिकाओं का अविकसत होना। उच्चारण स्थान और उच्चारण विधि के ठीक काम करने के लिए वागिंद्रियों की माँसपेशियों का परिपक्व होना आवश्यक है। बालक 16–18 मास में जाकर अ, आ, इ, ई, उ, ए स्वरों तथा प, म, त, ब, द तथा न आदि व्यंजनों का उच्चारण कर पाता है लेकिन 'ए', 'ओ' का उच्चारण सीखने के लिए शिशु 23–24 मास लगाता है। क, ग से ठीक उच्चारण के लिए लगभग 31 मास लगाते हैं। यों यह देखा गया है कि 12 सप्ताह का शिशु लेटे–लेटे ही सिर उठाता है तो स्वरों जैसी कुछ आवाज करता है। 20 सप्ताह में सहारे से जब शिशु को बिठाया जाता है तो 'प' जैसे व्यंजनों के साथ स्वर ध्वनियाँ निकालता है। 6 मास में जब वह बैठने की स्थिति में आजा है तो 'मां', 'दो', 'दी' जैसी आवाजें करता है। 12 मास के आस–पास शिशु मामा, दादा, पापा जैसी शब्दात्मक ध्वनियाँ निकालता है। 14–16 मास के आस–पास लघु वाक्य पदबंध जैसे 'दद', 'लल' तोती, 'ताता' आदि भाषिक अभिव्यक्तियों के उच्चारण के प्रयास करने लगता है। डेढ वर्ष में पहुँच कर शिश जटिल अनुतान के पैटर्न बोलने लगता है और जब वह 2–3 वर्ष का होता है तो ओष्ठ्य, स्पर्श, संघर्षी के क्रम में ध्वनियों का उच्चारण करता है। बालक सबसे आखिर में लुंठित वर्ग की 'र' ध्वनि का उच्चारण सीखता है। इस प्रकार शारीरिक विकास के साथ उसका उच्चारण व्यस्क की भाषा के समान होता है।

शब्दावली में निरंतर बढ़ोतरी

इसी प्रकार शब्दावली के विकास में एक और उच्चारण प्रयत्न की समस्या है, तो दूसरी ओर अर्थ या संकल्पनाओं के विकास की समस्या है। इसमें बालक के शारीरिक और मानसिक दोनों विकास साथ चलते हैं। इन दोनों के समन्वय से वह शब्दों का उच्चारण करता है। मस्तिष्क के विकास के साथ शब्दों की संकल्पनाएँ विस्तृत होती जाती हैं। भाषा के विकास तथा मस्तिष्क के विकास तथा मस्तिष्क के विकास में एक गहरा संबंध है। चिकित्सीय अन्वेषणों से सिद्ध हो चुका है कि 65 प्रतिशत तक परिपक्वता मूल्य पा जाने पर ही भाषा की शुरूआत होती है। पहले नौ मास का मस्तिष्क संपूर्ण तौल का 1/3 होता है और सात वर्ष तक अपनी तौल पूरी तरह से प्राप्त कर लेता है। लगभग तीन वर्ष की आयु में शिशु की मानसिक शक्तियाँ काम करने लगती है। सबसे पहले शिशु 'माँ' से अपनी माता का 'दू' से दूध को बोध कराता है, क्योंकि ये उसके सबसे पहले अधिक निकट रहते हैं। निकट और परिचित शब्दों से उसकी शब्दावली प्रारंभ होती है। इस प्रकार उसका संकल्पनात्मक विकास स्थूल से सूक्ष्म, निकट से दूर, मूर्त से अमूर्त और संपूर्ण से अंश की दिशा में अग्रसर होता है। सामाजिक संपर्क और विस्तार के साथ उसकी शब्दावली में निरंतर बढोतरी होती जाती है। यही कारण है कि बालक एक वर्ष की अवस्था में जहाँ केवल तीन शब्द बोल पाता है, दो वर्ष में 272, तीन शब्द में 896, चार वर्ष में 1500, पाँच वर्ष में 2072 और छह वर्ष में 2562 शब्दों का प्रयोग कर लेता है। स्मिथ की खोजों के अनुसार, उच्चतर माध्यमिक स्तर तक का शब्द ज्ञान 15000 से 16000 तक हो जाता है। शब्दावली के विकास का कारण मानसिक विकास नहीं है। न्यूमैन, एडलर आदि मनोवैज्ञानिकों का मत है कि पाँच वर्ष तक की अवस्था शरीर और मस्तिष्क के लिए बहुत ग्रहणशील होती है, उसका प्रत्यय ज्ञान अधिक स्पष्ट और अर्थपूर्ण हो जाता है।

वस्तुतः बालकों में भाषिक विकास के क्रम में तीन भाषा पूर्व प्रयास दिखाई पड़ते है रोना, तुतलाना और संकेत करना। इनमें रोना जीवन को शुरू के महीनों में सबसे अधिक प्रयोग होता है जो भाषिक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है। रोने से वाग्यांग अपनी आकृति पाते हैं, फेफड़े मजबूत होकर स्वरतंत्रियों की छोटी–छोटी कोशिकाओं में मजबूती आती है। लंबे 'परास' की दृष्टि से तुतलाने का भाषिक विकास में सर्वाधिक महत्व है, क्योंकि वास्तविक भाषा का विकास बाद में इसी से होता है। भाषा के अर्जन में धारण, प्रत्यास्मरण और प्रत्यभिज्ञान का बड़ा महत्व है। इसमें एक ओर शरीर की योग्यता अपेक्षित है, तो दूसरी ओर मानसिक परिपक्वता। किशोरावस्था में बालक की भाषा क्षमता में पूर्णता रहती है। भाषा ही मानसिक विकास का प्रथम सोपान है। इसी मानसिक विकास के कारण बालक/किशोर भाषा के माध्यम से संकल्पना, चिंतन, प्रतीकात्मकता, अनुपस्थित वस्तु का वर्णन या कल्पना आदि मानसिक शक्तियों का प्रकाशन करता है। वाक्यों या व्याकरण के विकास में भी बालक की मानसिक स्थिति सहायक होती है। संवेगात्मक स्थिति का भी भाषा अर्जन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

भाषा में संप्रेषणता

भाषा परस्पर संप्रेषण की क्षमता है। भाषा के अंतर्गत संप्रेषण के सभी विचारों और भावों की अभिव्यक्ति के ढंग आ जाते हैं, जो अर्थ का वहन करते हैं। इसके संप्रेषण के कई रूप है; लिखित, उच्चरित, सांकेतिक, विधाएँ, मुखाकृतियाँ, अभिनय आदि। भाषा की यही एक ऐसी विशेषता है जो मनुष्य को अपनी को पशुओं से अलग करती है। वाक् या वाणी भाषा का एक रूप है जिसमें वाग्यांगों से उच्चारित शब्द या ध्वनियाँ अर्थ वहन करती है। मनुष्य द्वारा उच्चरित सभी ध्वनियाँ भाषा नहीं है। रोना या अर्थहीन ध्वनियाँ तब तक भाषा नहीं है, जब तक कि उससे कोई अर्थ बोध न हो। बालड्रिज के अनुसार ''भाषा एक ऐसा व्यवहार है जो बच्चों को उसकी दुनिया बनाने, उसे अंतकेन्द्रित व्यक्ति से सामाजिक बनाने, काल्पनिक बनाने, नियंत्रण तथा सुरक्षा की स्थितियों के स्थापित करने, सूचना या ज्ञान से संपन्न बनाने और उसमें विचार, अनुभव तथा प्रवृतियाँ जगाने में शब्द – प्रयोग द्वारा सहायक होता है।' भाषा की कसौटियों में, बालक जब शब्दों को उच्चरित करे और वे आसानी से सबकी समझ में आएँ, न केवल उन लोगों को जो हमेशा उसके संपर्क में आने के कारण ही उन्हें समझ लेते हैं, बालक को प्रयुक्त शब्दों का अर्थ ज्ञात होना चाहिए और उसे शब्दों एवं वस्तुओं के साहचर्य का ज्ञान होना चाहिये, एक शब्द एक व्यक्ति या वस्तु के लिए ही प्रयुक्त होना चाहिये न कि कईयों के लिए बालक भाषा की स्थिति में वस्तुओं के साथ शब्द पहचाने जाते हैं, पर पहली कसौटी पर खरे नहीं उतरते, आदि शामिल है। बालकों को भाषा विकास की क्रियाओं पर अधिकार करना होता है। ये क्रियाएँ एक–दूसरे से संबंधित है। एक में सफलता का अर्थ है, दूसरे में सफलता, इनमें दूसरों की भाषा को समझना, शब्द समूह का निर्माण, शब्दों को संयुक्त करके वाक्य निर्माण तथा उच्चारण प्रमुख हैं। शिशु के वाक् विकास की प्रकृति पर विचार करने पर पाते हैं कि उनकी वाणी उनके तथाकथित रूदन से शुरू हो जाती है, इससे पहले कि कोई बोधपूर्ण संप्रेषण का विचार हो। जीवन के प्रारंभिक छह महीनों में चीखने और बबलाने से शिशु की भाषा की प्रगति होती है। पहले शिशु एकाक्षरीय ध्वनियाँ बोलता है, जैसे 'म', 'मा', 'आ', इत्यादि। इसके बाद वही पुनरावृत्तियों द्वारा द्विअक्षरीय ध्वनियाँ बन जाती हैं जैसे – बा–बा, मा–मा, पा–पा, चा–चा आदि। वस्तुतः ये ध्वनियाँ शिशु के अर्थ संप्रेषण के हेतुक होते हैं और इनमें संपूर्ण वाक्य रचना के अर्थ संप्रेषण का अंकन होता है। किन्तु यह स्थिति निष्क्रिय भाषा की प्राप्ति की है, जिसमें बालक समझता है पर प्रयोग नहीं कर पाता। इस निष्क्रिय भाषा की स्थिति के उपरांत की सक्रिय शब्दावली की प्रगति शुरू हो जाती है। शिशु में वाक्–विकास अधोलिखित क्रम से होता है;

क्र.सं.	प्रक्रिया	अवस्था	उच्चारण – विवरण
1.	क्रंदन	12 सप्ताह	स्वरों की तरह मुस्कराना
2.	किलकना	16 सप्ताह	कुछ ध्वनियों स्वरों जैसी
		20 सप्ताह	व्यंजनों के साथ
3.	बबलाना	6 महीने	किलकने से बबलाने की ओर
		8 महीने	बार–बार अभ्यास, अनुतान पैटर्न
		10 महीने	गरगलाहट के साथ आवाज का मिश्रण
4.	प्रारम्भिक वाक्य विन्यास		शब्दों के बीच अंतर समझना
4.1	प्रथम शब्द	12 महीने	एक शब्द, आदेश का बोधक, म (पानी) द (देना) ऊ (किसी वस्तु खिलौने आदि की ओर इशारा) मा–मा, पा–पा, दा–दा आदि।
		डेढ वर्ष	3–50 तक शब्द, अनुतान साँचा जटिल
4.2	द्विशब्दीय वाक्य	2 वर्ष	दो शब्दों के वाक्य, आसपास की जटिल वस्तुओं के नाम
4.3	'पाइवट' व्याकरण	ढाई वर्ष	शब्दावली में तेजी से विकास, बाल व्याकरण के लक्षण
5.	उत्तर वाक्य विन्यास	3 वर्ष	शब्दावली में आश्चर्यजनक विकास (टेलीग्राफिक भाषा)
		4 वर्ष	व्यस्कों जैसा व्याकरण, भाषा का पूर्ण विकास

शिशु में वाक्–विकास की प्रक्रिया :

1. क्रंदन : जन्म के साथ ही भावाभिव्यक्ति के लिए बालक किसी–न–किसी तरह की ध्वनि का उत्पादन करता है रोना, दर्द, भूख या शारीरिक कष्ट के कारण होता है। इसमें वाक् यंत्रों पर बालक का नियंत्रण नहीं होता, जो कि वाक् ध्वनियों के उत्पादन के लिए जरूरी होता है। फिर भी वाक्यंत्रों के प्रारंभिक उपयोग की यह पहली सीढ़ी है और भावाभिव्यक्ति की आदिम स्थिति भी। चार–पाँच महीने तक बालक रोकर अपनी ओर ध्यान आकर्षिक करता है और माँ की आवाज सुनकर चुप–सा हो जाता है।

2. किलकरी पाँच से आठ महीने तक बालक स्वतः ही निरर्थक निकालता है जो क्रंदन वाली अवस्था से निस्:संदेह अपेक्षाकृत नियंत्रित होती हैं और वाक्यंत्रों के उपयोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। ये ध्वनियाँ निरर्थक होने पर भी भावी भाषा–विकास और ध्वनियों के उत्पादन के लिए आधार का कार्य करती हैं। इसमें स्वर और व्यंजननुमा ध्वनियाँ सुनाई देती हैं और बालक का यह पुनर्निवेश का काम करता है।

3. बबलाना सात से नौ महीने का होते–होते बालक अपनी कुछ ध्वनियों को बार–बार दुहराता है और उनके उच्चारण से संतोष एवं आनंद का अनुभव करता है। ये ध्वनियाँ अधिकतर ओष्ठ्य होती है और इसका रूप सरल–सा होता है। इस समय तक बालक अपने आसपास के वातावरण को पहचानने लगता है।

4. प्रारम्भिक शब्द और वाक्य विन्यासः एक वर्ष का होते–होते बालक प्रथम शब्द का उच्चारण करने लगता है। पापा, बाबा, मामा कहना सीख जाता है। बालक की अनुकरण शक्ति भी बढ़ जाती है। ये एक शब्दीय वाक्य कहलाते हैं क्योंकि इसके द्वारा बालक अपने को संप्रेषित करता है। परिवार जन इन एक शब्दीय वाक्यों को पूरा बोलकर बच्चे को सुधारते हैं और पुनर्निवेश में मदद करते हैं।

5. उत्तर वाक्य विन्यासः 1½ वर्ष का होने पर बालक दो या तीन शब्दों वाले वाक्यों का प्रयोग करने लगते हैं। यह अवस्था टेलिग्राफिक भाषा और बाल व्याकरण की स्थितियाँ हैं। तीसरे वर्ष में आते–आते मिश्र वाक्यों का प्रयोग शुरू हो जाता है। चार वर्ष की अवस्था तक बालक व्यस्कों जैसी

भाषा का प्रयोग करने लगता है, पर शैली में परिपक्वता नहीं आती। छोटे बालक शब्दों का उच्चारण अनुकरण द्वारा सीखते हैं। बालक सुने हुए शब्द की नकल करता है। अनुकरण की इस प्रक्रिया में ठीक शब्द भी उच्चरित हो सकता है और औच्चारणिक दृष्टि से गलत भी। प्रारंभिक शैशवकाल में ध्वनियों के अनुकरण की क्षमता इतनी लचीली होती है कि उसका सारा उच्चारण कुछ ही समय में बदला जा सकता है। जागरूक परिजन शैशवावस्था में ही अपने वत्सों की उच्चारणगत त्रुटियों को सुधार लेते हैं क्योंकि बाल्यावस्था में जो उच्चारण आदत बन जाती है उसे परिवर्तित करना कठिन हो जाता है। आरंभ में उच्चारण समझने योग्य नहीं होते। केवल परिजन ही उनको समझ पाते हैं। जैसे–जैसे आयु बढ़ती है वैसे–वैसे उच्चारण में तबदीली होती है। कुछ बालक शुद्ध बोलते हैं और कुछ इतना अशुद्ध कि परिजनों के अतिरिक्त किसी अन्य को समझने में कठिनाई होती है। शिशुओं में भी बच्चियों के उच्चारण बच्चों की तुलना में अधिक शुद्ध होते हैं, क्योंकि बच्चियों का वागयंत्रा अधिक लचीलापन लिये होता है। व्यंजन एवं व्यंजन गुच्छ सबसे कठिनता से उच्चारित होते हैं। स्वर एवं अर्ध स्वर इनकी अपेक्षा सरल होते हैं। कुछ सरल व्यंजन हैं जिन्हें बालक अपेक्षाकृत जल्द उच्चारित कर लेता है। जैसे 'प' वर्ग 'त' औरत वर्ग एवं स्वरों में हस्व स्वर अ, इ, उ तथा दीर्घ स्वर 'आ' शामिल है। कठिन व्यंजनों में संघर्षी व्यंजन एवं व्यंजन गुच्छ ऋ, स्त, स्त्रा, स्क, द्र, प्ल इत्यादि हैं। लयात्मक गुण की दृष्टि से बालक की आवाज का तान उच्च सुरात्मक होता है। आरंभ में नासिय ध्वनियाँ उच्चारित नहीं हो पातीं, पर परिवर्तन और अभ्यास के साथ आने लगती हैं। आवाज धीरे–धीरे परिवर्तित होती रहती है, उच्चारण निश्चित, स्पष्ट और दृढ़ होता जाता है। शिशुओं में ध्वनियों के विकास और उच्चारण क्रम को सुगन भाटिया ने इस तरह प्रस्तुत किया है :–

उच्चारण / ध्वनि विकास का क्रम

आयु	स्वर	व्यंजन और शब्द
18 मास से 22 मास तक	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, एए, आई, ओई	म, त, ब, द, व, न, पापा, बाबा, मम, मामा
23 मास से 24 मास तक	एय, उई, अय	जज, ज, नन, दद, दादा, दाई
25 मास से 30 मास तक	आ ओ	बब, ल, बद, अप, आप
31 मास से लेकर	क्रमशः क वर्ग, त वर्ग, ट वर्ग, चवर्ग, लुंठित (र) आदि	

साधारणतः सामान्य बालक की भाषा में ध्वनि–विकास ओष्ठ्य अवस्था से प्रारंभ होता है। स्थूल से सूक्ष्म के अनुक्रम में ओष्ठ्य ध्वनियों के पश्चात दंत्य, तालव्य और कंठ्य ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं। मूर्धन्य ध्वनियाँ बहुत बाद में आती हैं। सघोष ध्वनियों की अपेक्षा अघोष सरल मानी जाती है। पंचमाक्षरों में 'म' और 'न' सरल हैं, शेष कठिन। उष्म ध्वनियां (श, ष, स, ह) शिशु के लिए कठिन मानी जाती है, अतः ये बाद में उच्चरित होती है। संघर्षी से पहले स्पर्श तथा पश्च व्यंजन से पहले अग्र व्यंजन उच्चरित होते हैं। संयुक्त स्वरों में 'ऐ' और 'ओ' ध्वनियाँ भी कामी फ बाद में आती हैं और सबसे अंत में लुंठित (र) ध्वनि उच्चरित होती है। ऐसी स्थिति में बालक 'र' ध्वनि के स्थान पर 'ल' ध्वनि से काम चलाता है। ध्वनि विकास क्रमों के उपरांत शब्दावली विकास की प्रक्रिया आरंभ होती है।

शब्दावली का विकास :–

शब्दावली का विकास बालकों में तीन स्तरों, 'प्रथम शब्द, प्रारम्भिक शब्दावली और शब्द–समूह का विकास, पर होता है। प्रथम शब्द के उच्चारण से पूर्व ही बालक में भाषा विकास काफी मात्रा में हुआ रहता है, किन्तु पता लगाना कठिन है कि बालक का प्रथम शब्द क्या है क्योंकि अबोध बालक किसी भी ध्वनि को, चाहे वह कोश में ही मिले, अपनी किसी वस्तु या भाव को निर्देशित करने में प्रयुक्त कर सकता है। कुछ ध्वनियाँ शब्द की तरह अर्थ–संप्रेषण कार्य कर सकती हैं, कुछ नहीं। प्रारंभिक शब्दावली की दृष्टि से बालकों के प्रारंभिक शब्दों में संज्ञाओं की अधिकता रहती है। साथ ही, उनमें कहीं–कहीं क्रियाएँ क्रिया विशेषण एवं विशेषण भी मिल जाते हैं। सर्वनाम सबसे अंत में आते हैं। लेनबर्ग (1966) के अनुसार, बालक 18–21 मास में 20 शब्द, 21 मास से 200, 24–27 मास में 300–400 और 36–39 मास में 1000 शब्द बोलते हैं। शब्द संख्या की कम अधिकता वातावरण पर निर्भर करती है। संपन्न वातावरण में अधिक वस्तुओं के होने के कारण बालक अधिक शब्द सीख सकता है, जबकि निर्धन वातावरण में वस्तुओं का अभाव शब्द संख्या को सीमित कर सकता है। आर्थिक पिछड़ेपन के साथ–साथ संपर्क का अभाव भी शब्द संख्या को सीमित कर सकता है। पारिवारिक स्थिति तथा सम आयु के बालकों के साथ भाषा प्रयोग कितनी मात्रा में है, इसका भी शब्द सीखने पर प्रभाव पड़ता है। बालकों के रूचिकर मनोरंजन वाले कार्टून नेटवर्क के कार्यक्रम उनमें शब्दावलीगत बढ़ोतरी में अधिक सक्षम हो रहे हैं।

शब्द समूह का विकास दो विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है। साधारण शब्द समूह, जिनमें साधारण अर्थवाले शब्द बाते हैं, जो विभिन्न स्थितियों में प्रयुक्त हो सकते हैं। पानी, दूध, रोना आदि इस श्रेणी में आते हैं। विशिष्ट शब्द समूह, जिसका विशिष्ट अर्थ हो और जो कुछ ही परिस्थितियों में प्रयुक्त होते हैं। साधारण शब्द–समूह के शब्द अधिक उपयोगी होते हैं। अतः उन्हें पहले सीखा जाता है। प्रत्येक स्थिति में साधारण शब्द–समूह विशिष्ट शब्द समूह से बड़ा होता है। विशिष्ट शब्दावली में चालाकी की शब्दावली, शिष्टाचार विषयक शब्दावली, वर्ग या रंग विषयक शब्दावली, अंक विषयक शब्दावली, काल संबंधी शब्दावली, अपभाषा, गुप्तभाषा आदि शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त व्याकरणिक प्रकार्यों संबंधी शब्दावली, रूप प्रक्रियात्मक शब्दावली, शब्द और संकल्पना, प्रत्यक्ष ज्ञान और संकल्पना, अनुभव और संकल्पना तथा शरीर के अवयवों की संकल्पना संबंधी शब्दावली प्रमुख है।

जब बनने लगते हैं वाक्यात्मक विकास बालकों में वाक्यात्मक भाषिक रूपों का विकास तीन स्तरों पर दिखाई पड़ता है। प्रारम्भिक वाक्यात्मक विकास एक या डेढ़ वर्ष की वय के मध्य शिशु अपने जीवन का प्रथम शब्द बोलता है। एक शब्दीय वाक्य को परिजन पूरे वाक्य का रूप देता है। व्याकरण का प्रारंभ भी इसी अवस्था में माना जाना चाहिए। दो वर्ष के लगभग बालक शब्दों को मिलाकर वाक्य निर्माण करना सीख जाता है। दो साल का बालक शब्दों को छोटे वाक्यों में संयुक्त करता है, जिनमें अधिकतर अपूर्णता लिए होते हुए भी इंगितों के साथ मिलकर भावाभिव्यक्ति में सफल होते हैं। इन वाक्यों में अधिकतर एक या अधिक संज्ञा, एक क्रिया और यदाकदा विशेषता तथा क्रिया–विशेषण होते हैं। चार या पाँच वर्ष की उम्र तक बालक मिश्र और संयुक्त वाक्य कभी–कभी प्रयुक्त करने लगते हैं। हर वय में वाक्य के प्रकार और लंबाई में व्यक्तिगत भिन्नता देखी जा सकती है। अमीर और संपन्न माहौल के बालक बड़े और जटिल वाक्य प्रयोग करते हैं, जबकि निर्धन या पिछड़े समाज के बालक छोटे और सरल। संपन्नता और निर्धनता का संबंध परिवार के भाषिक एवं शैक्षणिक स्तर से है। बालकों के प्रारंभिक वाक्य–निर्माण के बारे में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दो वर्ष की आयु के आस–पास बालक दो या तीन शब्दों के वाक्य बनाने लगता है। तीसरे वर्ष में उसकी वाक्य–निर्माण प्रक्रिया को देखकर यह कहा जा सकता है कि वह भाषाई दृष्टिकोण के समर्थ हो गया है। ये छोटे वाक्य व्यस्क भाषा की अपेक्षा आधार संरचना के सिद्धांत को व्यक्त करते हैं। बहुत ही कम नियमों के माध्यम से इन वाक्यों को आंतरिक या गहन संरचना के संदर्भ में समझा जा सकता है। शिशु की भाषा में बाह्य संरचनाओं की बहुलता होती है, क्योंकि ये संरचनाएँ मुख्य रूप से अभिव्यक्ति परक होती हैं। चामस्की का मानना है कि रचनांतरण नियमों के माध्यम से गहन संरचना, जो कि शिशु प्रायः कम से कम शब्दों से निर्मित करता है, को बाह्य संरचना में बदलता रहता है।

वाक्यात्मक विकास की दूसरी प्रक्रिया में सरल वाक्य, संयुक्त वाक्य और मिश्र वाक्य के प्रयोग शामिल है। संयुक्त वाक्य पहले तो दो वाक्य एक के बाद दूसरे वाक्य रख कर बनते हैं, बिना किसी संजोजक के प्रयोग के। मिश्र वाक्य बहुत बाद में अर्थात् चार वर्ष के लगभग बालक काफी अच्छे वाक्य प्रयोग करने लगता है। तीसरी स्थिति में, निर्देशक वाक्य, निषेधात्मक वाक्य, प्रश्न वाचक वाक्य तथा आज्ञार्थक वाक्य प्रयुक्त होते हैं। वाक्य निर्माण के मनोविज्ञान के संबंध में नॉम चामस्की एक भाषा की वाक्यीय कोटियों की समानता दूसरी भाषा की वाक्यीय कोटियों के रचनांतरण विश्लेषण के माध्यम के रूप में मानते हैं। बालक भी इन्हीं सार्वभौम नियमों के आधार पर वयस्क की भाषा समझता है। बालक भाषाई व्याख्या के लिए संभावित नियमों के लिए प्राक्कल्पना करता है। इनके आधार पर भविष्य में सुने जाने या कहे जाने वाले वाक्य के संबंध में पूर्वकथन करता है। इन पूर्व कथनों में और नए वाक्यों में यदि कोई अंतर हो तो नई प्राक्कल्पना का निर्माण करता हैं। यह कार्य निरंतर तब तक चलता रहता है, जब तक कि बालक की ग्रहण–प्रणाली पूर्ण रूप से

कार्य शुरू न कर दे। इस विश्लेषण का अर्थ यह नहीं कि बालक प्राक्कल्पना से स्वयं गृहीत नियमों की व्याख्या भी कर सकता है। नियमों के ज्ञापन का रूप अव्यक्त होता है। चामस्की तथा उनके सहयोगियों के मतानुसार भाषा विकास के अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य बालक की भाषायी सामर्थ्य की व्याख्या करना है, और भाषायी सामर्थ्य में ध्वनि प्रक्रिया या शब्दावाली का स्थान गौण है। वाक्य बनाने को या वाक्यों में बोलने की क्रिया को मनुष्य में निहित मानसिक योग्यता माना गया है। जेस्पर्सन शिशु के प्रारम्भिक वाक्य–निर्माण की प्रक्रिया में प्रतिध्वनि का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं। शिशु वाक्य को सुनते हैं उसे प्रतिध्वनि का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं। शिशु वाक्य को सुनते हैं उसे प्रतिध्वनित करते हैं। यह क्रिया या तो पूरे वाक्य का अनुकरण होती है, या फिर वाक्य के अंतिम भाग का।

बालकों में भाषिक विकास की प्रक्रिया का अगला चरण बोधन–विकास का होता है। भाषा बोधन एक मनोवैज्ञानिक जटिल प्रक्रिया है। भाषाबोधन वह प्रक्रिया है जिसमें संरचना और अवसंरचना, दोनों शामिल है। अतः बोधन की प्रक्रिया को वह नहीं मानना चाहिए जिसमें अर्थ विसंकेतित होता है और बाद में उस पर कार्य किया जाता हैं क्योंकि समझने का अर्थ है; वास्तव में संदेश, अभिवृत्ति और संदर्भ के संबंध में जो स्थिति बनती है, उससे समझना। वस्तुतः भाषा बोधन एक अंतर्प्रक्रियात्मक प्रक्रिया है अर्थात् किसी भाषिक उक्ति को समझने में श्रोता के उस संदर्भ को प्रस्तुत करना होगा जिसमें उससे कुछ कहा गया है। बोधन तब जो ज्ञात या प्रस्तुत है और जो नई सूचना जोड़ी जानी हो, उसके बीच के संबंध निर्माण और सुधार में संबंध है। क्लार्क और क्लार्क (1977) बोधन के दो अध्ययन क्षेत्रा मानते हैं; संरचना प्रक्रिया जो उस तरीके से सब है जिसमें श्रोता वक्ता के शब्दों के अर्थ को व्याख्यापित करता है तथा उपयोग की प्रक्रिया जिसमें श्रोता किस तरह व्याख्याओं को आगे के उद्देश्य के लिए प्रस्तुत करता है, उसे जाना जाए। समवेत रूप में कहा जा सकता है कि बोधन एक एकात्मक प्रक्रिया है जिसके दो घटकऋस्वन प्रक्रियात्मक वाक्य विन्यासात्मक प्रक्रिया तथा गहन आर्थी संबंधों का प्रतिनिधितव गतिवाही प्रक्रियाओं के अभिक्रमण।

विकास बोधन का :–

बोधन के विकास को हम भाषा विकास के प्रारम्भिक चरणों से शुरू करें कि वे सरल उक्तियों के निकटतम संदर्भ में कैसे व्याख्यापित होते हैं। छोटे बच्चे अपने लिए अपनी माँ की उक्तियों का पुनर्निर्माण कैसे करते हैं ताकि संप्रेषण हो सके। यह भी दिलचस्प है कि कैसे बच्चे शब्दार्थ को समझाने की योग्यता प्राप्त करते हैं और कैसे उनका विकासमान ज्ञान उनके संदर्भ से अंतःक्रिया करता है ताकि बोधन के रचना कौशल का निर्माण हो सके। अर्थ–विकास की प्रक्रिया बालकों के भाषिक विकास का अगला पड़ाव है। शिशु रोने के माध्यम से विविध भावों की अभिव्यक्ति करता है और माता–पिता और परिजन बालक के इस रूदन को निश्चित अर्थ देते हैं, जिससे पुनर्बलन होकर अभिव्यक्ति सशक्त बनती है। प्रारम्भिक अवस्था में बालक के मुख से उच्चरित ध्वनियों को श्रोता व्यक्तियों तथा वस्तुओं से सम्बद्ध कर देता है और वे सार्थक शब्द का रूप ले लेती हैं।

बालक शब्दों का अर्थ परिवेश के संदर्भ में साहचर्य तथा पुनर्बलन की प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करता है। परिवेश में प्राणियों तथा पदार्थों के साथ प्रयुक्त शब्दों का साहचर्य तथा वयस्कों द्वारा उनकी स्वीकृति अर्थ–विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। बालक प्रारंभ में एक शब्द का ही अर्थ सीखता है जो विशिष्ट होता है और जरूरतों की पूर्ति में सहायक होता है। समय बीतने के साथ–साथ वह शब्दों के सामान्य तथा प्रचलित अर्थ से परिचित होता है। वह वस्तुओं, घटनाओं तथा शब्दों के साथ उनके संकल्पनात्मक पक्षों एवं संबंधों को भी द्योतित करने का प्रयास करता है। अर्थ को सीखने के क्रम में बालक प्राप्त अनुभवों तथा निकटवती संदर्भगत संकेतों के आधार पर शब्दों तथा उच्चारों को समझने का प्रयास करता है। उसका ध्यान पहले भाषा–प्रयोक्ता के हाव–भाव पर केन्द्रित होता है और बाद में सम्बद्ध भाषाई प्रयोगों पर।

अस्पष्टता की प्रवृति

बालक द्वारा प्रयुक्त प्रारंभिक सरल अर्थ क्रमशः व्यस्कों द्वारा व्यवहृत अर्थ में बदलता है। अर्थ विकास क्रम में बालक शब्दों के अर्थ में नवीन अंश जोड़ता है, परिवर्धित करता है और कुछ अर्थों के बदले नए अर्थ को स्थापित करता है। कभी–कभी वह सरल शब्दों के अर्थ में समाहित करता है। सामान्यता शब्दों के अर्थ सीखने का क्रम विशिष्ट शब्दों के अनुभव तथा उद्भासन से सम्ब रहता है। वह वस्तुओं और घटनाओं का संबंध स्थापित करता है जिससे अर्थ ग्रहण–प्रक्रिया में सुगमता होती है। अर्थ के विकास और अधिगम में बालक धीरे–धीरे प्रतीकात्मक प्रयोगों का इस्तेमाल करते हैं। बच्चों के प्रतीक आमतौर पर व्यस्कों के प्रतीकों की अपेक्षा अर्थ–पूर्ण विकास के निचले स्तर पर होते हैं। व्यस्क व्यक्ति एक प्रतीक को बार–बार प्रयोग करके, वस्तु के सामान्य गुणों को अलग कर लेता है और उन्हें मूल अर्थ में संलिप्त कर लेता है। बच्चों के शब्दों के अर्थों के संबंध अधिक अस्पष्ट होने की प्रवृत्ति होती है।

बालकों में भाषिक विकास का अंतिम पड़ाव है; भाषिक सप्रेषण का विकास। इस प्रक्रिया में वक्ता, श्रोता और परिस्थिति के सन्दर्भ में त्रिकोणात्मक संदर्भ होते हैं। संप्रेषण की सफलता के लिए आवश्यक है कि वक्ता यह जाने कि श्रोता उसी तरह का व्यवहार कर रहा है, वक्ता द्वारा अभीच्छित स्थिति पर श्रोता उसी तरह का व्यवहार कर रहा है तथा श्रोता यह जाने कि वक्ता इसे उसी अर्थ में ग्रहण कर रहा है। संप्रेषण के प्रत्येक संदेश में कई उद्देश्य शामिल है जिनमें संप्रेषण में वक्ता का उद्देश्य हैं किसी वाचिका क्रिया का पालन या प्रभाव, श्रोता को कार्य करने के लिए प्रभावित करना, श्रोता के ज्ञान को सुधारना तथा आपस में अनुभवों का व्यक्त करना। बालकों में प्रारंभिक अंतक्रिया विकास में 'संवाद की संकल्पना' प्रमुख उपलब्धि है। इसके दो पक्ष है; अन्योन्यता का विचार तथा साभिप्रायता का विकास। 'अन्योन्यता' उस भूमिका को कहते हैं जो अंत क्रिया में शिशु निभाता है जबकि साभिप्रायता का विचार तब विकसित होता है जब एक बार शिशु को पता चले कि उसका व्यवहार संप्रेशणात्मक मूल्य रखता है और दूसरे के व्यवहार को प्रभावित करके इच्छित परिणाम ला सकता है। जैसे शिशु का दर्द से पीड़ित होकर रोना और दूसरे को आकर्षित करने के लिए रोने में अंतर है। साथ ही, बालक यह भी सीखता है कि उसकी मुस्कान, आवाजें, अंग विक्षेप और गलतियां दूसरे को आकर्षित करके प्रभाव डालती है। अन्य दो या तीन विकास संवाद की संकल्पना से सम्बद्ध है, जिनमें संज्ञानात्मक प्रक्रिया का विकास आवश्यक है ताकि संवादात्मक क्षमता उत्पन्न हो सके। दूसरा है ध्यान विस्मृति का विकास, जो शिशुओं को दो वस्तुओं में क्रमशः संबंध स्थापित करना सिखाता है। तीसरा विकास बालकों के संप्रेषणात्मक सरणी के विस्तार हैं जैसे कि मुस्कराना, रोना, जो कि जन्म के बाद के प्रारम्भिक सप्ताह से ही देखे सकते हैं। इशारा करना एव अंग विक्षेप में गति जरूरी है और वाचिकता में भी एक तरह की हो या दूसरी तरह की। और अंत में शब्दों का आविर्भाव, जो कि मिलकर अर्थ को जन्म दे और उससे बच्चा अपने को व्यक्त कर सके और समझ सके।

सामाजिक प्रतिक्रिया

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बालकों में भाषिक प्रत्यक्षण में शिशु अपनी क्रिया के साथ बबलाने की ध्वनियों को जोड़ता है जो उसकी क्रिया का आंतरिक भाग होता है। लेकिन बबलाने की इन ध्वनियों को वह अपने आस–पास के व्यक्तियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा के लिए सामाजिक प्रतिक्रिया के रूप में प्रयुक्त करता है। वह वाक् ध्वनियों का अधिक से अधिक अनुकरण करने की कोशिश करता है और अपने इन प्रयासों में बड़ों द्वारा व्यक्त खुशी से प्रेरित होता है। जब कभी बालक किसी खिलौने या खाद्य वस्तु की ओर हाथ बढ़ाता है उसकी माँ उस वस्तु के नाम के आधार पर आवाज करती है। बच्चा उस नाम को उस वस्तु के साथ साहचर्य करके देखता है, नाम उस वस्तु के अनुभव का हिस्सा बन जाता है। वह यह देखता है कि वस्तु के नाम के समान किसी एक ध्वनि के उच्चरित करने पर लोग उसे वह वस्तु देते हैं। उससे लगता है कि नामकरण किसी भी वस्तु को पाने का तरीका हो सकता है। जब वह यह जान जाता है तो हर वस्तु को नाम देने लगता है और कालान्तर में कभी अधिगम द्वारा तो कभी अनुभव को आत्मसात् करके अपने भाषिक विकास की प्रक्रिया में लग जाता है। अर्जन बालक के सहज विकास के साथ चलने वाली प्रक्रिया है। विकास के अनुक्रम में बालक अनेक कौशलों, चलना, बैठना, दौड़ना, खाना–पीना, रोना तथा खेलना आदि का अर्जन करता है।

भाषा का विकास भी इसी क्रम में यथासंभाव एवं यथासमय प्रारंभ हो जाता है। भाषा का अर्जन भी मानव शिशु के व्यक्तित्व निर्माण का ही प्रयास है। इसलिए अर्जन–क्रिया को भी सहज क्रिया माना जा सकता है, लेकिन अधिगम स्वाभाविक क्रिया नहीं है। वस्तुतः भाषिक विकास प्रक्रिया एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमें अनेक प्रकार की क्रियाएँ तथा प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। वह एक मानसिक संगठन है, जिसके द्वारा इन क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं का पुनर्गठन होता रहता है। किसी नई बात को सीखने के साथ ही मानसिक जगत में नवीन व्यवस्था उत्पन्न होती है। इस संदर्भ में भाषाओं के अर्जन

© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 11 | October – December 2017

विकास और व्यवहारों पर मौलिक शोध कार्य अपेक्षित हैं ताकि जिन आधारों पर बालकों के माषिक विकास के प्रतिमानों को ठीक तरह से समझा जा सके। मनोभाषिकी भाषाविज्ञान की नवीन शाखाओं में से एक है और बालमनोभाषिकी नवीनतम शाखाओं में से एक। भारत ज्ञान की विविधा विधाओं से संपूर्ण विश्व में अग्रणी रहा है 'इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक नाअम चाम्स्की ने पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' को 'मानव मधा की श्रेष्ठ अप्रतिम कृति' कहा है किन्तु, कालांतर में एक साधन के रूप में भाषा के विभिन्न पक्षों के अध्ययन क्रम में विराम–सा आ गया है। भाषा मानव के अव्यक्त व्यक्तित्व का व्यक्त रूपायन है। साध्य रूप में यह सार्वभौम चेतन–प्रक्रिया के माध्यम से संपूर्ण ज्ञान–विधाओं के रूप में व्यक्त और अव्यक्त सीमाओं का एक विधान है। यही भाषा की वस्तुगतता है।

मनोभाषिकी विज्ञानों का विज्ञान है। मानसिक और स्नायविक संपूर्णता ही भाषा की संपूर्णता और समग्रता है। उक्ति–प्रक्रिया, उक्ति ग्रहण, लेखन और पठन; सबके लिए हमारी मानसिक और स्नायविक प्रक्रियाओं की अनिवार्यता है। आज भाषा के मानव–सापेक्ष अध्ययन में पाश्चात्य भाषाविद् मनोवैज्ञानिक एवं मानस चिकित्सक अत्यंत गहरी अभिरूचि के साथ प्रवृत हो रहे हैं और गुरू शिरोमणि भारत अज्ञान और अंधविश्वास की चिरनिद्रा में लीन है। जरूरत है अनुसंधान की 'बाल मनोभाषिकी' और 'बालकों में भाषा का विकास' मौलिक शोध पत्रों के रूप में प्रस्तुत है। जहाँ तक मुझे ज्ञान है, ये दोनों आलेख भारत में अपने आप में नूतन और नवीन हैं। इन आलेखों में विश्वभर में हुए आजतक के महत्वपूर्ण अनुसंधानों को विभिन्न स्त्रोतों से संकलित करके उनकी अनुवाद द्वारा व्याख्या और परीक्षा की गई है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि भारत में भाषा के मानव सापेक्ष अध्ययन का पूर्णतः अभाव है और बाल मनोभाषिकी तो बिल्कुल नगण्य स्थिति में है। इस क्षेत्र में व्यापक शोध कार्यों की महत्ती आवश्यकता है। विषय की व्यापकता और विस्तार के कारण संक्षिप्तता से काम लिया गया है। प्रयोगिक अध्ययन और सम्बद्ध विषयों के भागी अनुसंधान पर ही इनकी सफलता और सार्थकता निर्भर है। हमारे यहाँ इससे सम्बद्ध सामग्रियों का असीम भंडार है।

सन्दर्भ :–

1. जे.बी. कै रोल, द स्टडी ऑफ लैंग्वेज, कैम्ब्रिज, हारवर्ड–विश्वविद्यालय प्रेस, 1953 – लैंग्वेज डेवलपमेण्ट इन चिल्ड्रन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशन रिसर्च – 1960
2. एम. शरमैन : द डिफरेंसियेशन ऑफ इमोशनल रिस्पोंसेज इन इफैंट्स, जर्नल ऑफ द कंपेरेटिव साइकोलाजी, 1935
3. रोमन या कोब्सन : किंडरस्प्राचे, एफासि, डण्ड ऐलेगेमिन लाडन गेसेत्ज, उससाल्प, 1941
4. एच.वी. वेल्टन : द ग्रोथ ऑफ फोनेमिक एण्ड लैक्सिकल पेटन्स इन इनफैंट लैंग्वेज, 1943
5. वाल्डविन : मेंटल डेवलपमेंट इन द चाइल्ड एण्ड द रेस, न्यूयार्क
6. एफ.बी. स्किनर : वर्बल बिहेवियर, न्यूयार्क, अप्लेटन संच्युरी 1957
7. एन.मीलर एण्ड जे.डोलार्ड : सोशल लर्निंग एण्ड इमिटेशन, येल यूनिर्वसिटी प्रेस – 1941
8. सी.इ. ओसगुड एण्ड टी.इ. से ओक : साइकोलिंग्विस्टिक्स, वाल्टिमोर – 1945
9. ओ.एच.मोरेर : ऑन द साइकोलाजी ऑफ टाकिंग वर्ड्स, सेलेक्टेड पेपर्स – 1950
10. जे. पाइगे : द ओरिजन ऑव इंटेलिजेंस इन द चाइल्ड, लंदन – 1952
11. एच.एम. विलियम्स : डेवलपमेंट ऑफ लैंग्वेज एण्ड वोकेब्युलरी इन यंग चिल्ड्रेन – 1937
12. जे.जी. योडियाक : ए स्टडी ऑफ द लिंग्विस्टिक फंक्शनिंग ऑफ चिल्ड्रेन विच आक्र्यूलेशन एण्ड रीडिंग डिसैबिलिटी" – 1947
13. डी. मैकार्थी : लैंग्वेज डेवलपमेंट इन चिल्ड्रेन ए मैनुअल ऑफ चाइल्ड साइकोलाजी – 1954
14. आर. याकोब्सन एण्ड एम हाले : फंडामेंटल्स ऑफ लैंग्वेज – 1956
15. एम.एम. लीविस : इन्फैंट स्पीच – 1951
16. ओ.सी. इर्विन : डेवलपमेंट ऑफ स्पीच ड्यूरिंग इन्फैंसी – 1947
17. सी.एम. टेपलिन : सर्टेन लैंग्वेज स्किल्स इन चिल्ड्रेन – 1957
18. एच.वी.वेल्टेन : द ग्रीथ ऑफ फोनेमिक एण्ड लैक्सिकल पैट्रन्स इन इंफैट लैंग्वेज – 1943
19. जे.ए. विल्किंस : क्लज इन एफासिया साइन, सिंग्नल्स एण्ड सिंबाल्स–1
20. जेम्स एच.एस. बोसार्ड : द सोशियोलाजी ऑफ चाइल्ड डेवलपमेंट, न्यूयार्क – 1954
21. डी.जे. साइबर्स : द फस्ट टू इयर्स, युनिवर्सिटी मेनासोटा प्रेस, 1933